रुक्मिणी नार्वेकर

बनाम

विजया सातार्डेकर और अन्य।

(आपराधिक अपील संख्या 1576-1577, 2008)

3 अक्टूबर 2008

[मार्कंडेय काटजू और अल्तमस कबीर, जे.जे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 एस.एस. 227, 482 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - आरोप तय करना - आरोप तय करते समय और अपराध का संज्ञान लेते समय न्यायालय द्वारा विचार किए जाने वाले साक्ष्य - प्रति काटजू, जे: माना गया: आरोप तय करते समय न्यायालय द्वारा आमतौर पर बचाव सामग्री पर गौर नहीं किया जा सकता है - हालाँकि, बहुत ही दुर्लभ और असाधारण मामलों में जब ट्रायल कोर्ट को दिखाए जाने पर कुछ बचाव सामग्री स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है कि अभियोजन पक्ष का संस्करण पूरी तरह से असंगत या बेतुका था, तो न्यायालय इस पर गौर कर सकता है - प्रति कबीर, जे: आरोप तय करने के चरण में आरोपी के लिए अपने बचाव के समर्थन में कोई सबूत पेश करने की कोई गुंजाइश नहीं है और उस स्तर पर मजिस्ट्रेट द्वारा केवल ऐसी सामग्री पर ही विचार किया जा सकता है जो सीआरपीसी की धारा

227 में इंगित की गई है - हालाँकि, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत की गई कार्यवाही में, न्यायालय उस सामग्री पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है जो अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत की जा सकती है - मौजूदा मामले में, धोखाधड़ी का आरोप है - न्यायालय द्वारा: प्रथम दृष्टया मामला आरोपी नंबर 1 के खिलाफ बनता है - कार्यवाही रद्द करने के लिए उपयुक्त मामला नहीं - आरोपी नंबर 2 के खिलाफ, यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि वह आरोपी नंबर 1 द्वारा की गई धोखाधड़ी में शामिल थी - इसलिए प्रथम दृष्टया उसके खिलाफ मामला नहीं बनता है - दंड संहिता, 1860 - एस एस. 409, 420।

शिकायतकर्ता-अपीलकर्ता ने एस एस.409 और 420 आईपीसी के तहत एक एफआईआर दर्ज की, जिसमें आरोप लगाया गया कि 'आरएस', आरोपी नंबर 1 जो एक वकील था, ने झूठा प्रतिनिधित्व करते हुए पावर ऑफ अटॉर्नी पर शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर ले लिए कि यह उसे किसी निश्चित संपत्तियों के संबंध में अदालती मामले में उपस्थित होने में सक्षम बनाने के लिए था। पावर ऑफ अटॉर्नी का इस्तेमाल आरोपी ने अपनी पत्नी, दूसरे आरोपी 'वीएस' को संपत्ति बेचने के लिए किया था। उक्त संपत्ति शिकायतकर्ता की थी। दोनों आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया. इसके बाद, आरोप पत्र में कथित अपराध का संज्ञान लिया गया और समन जारी की गई।

आरोपी-प्रतिवादियों ने पुनरीक्षण दायर किया जो खारिज कर दिया गया। उस आदेश के विरुद्ध एक रिट याचिका दायर की गई थी। उच्च न्यायालय ने एक सिविल मुकदमे में एक 'डीएन' के साक्ष्य पर भरोसा करते हुए रिट याचिका को अनुमति दी।

इस अपील में, अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय को आपराधिक मामले को रद्द करने के लिए सिविल वाद में सबूतों पर भरोसा नहीं करना चाहिए था; कि आरोप तय करते समय केवल अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर ही न्यायालय द्वारा गौर किया जा सकता है और बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर गौर नहीं किया जा सकता है। प्रतिवादी ने तर्क दिया कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए उक्त साक्ष्य पर तत्काल मामले के तथ्यों पर भरोसा किया जा सकता था।

अभिनिर्धारित अपीलों का निपटान करते हुए, न्यायालय ने कहा:

प्रति काटजू, जे.:

1. यदि एफआईआर में आरोपों को सही माना जाता है तो प्रथम दृष्टया प्रतिवादी 'आरएस' के खिलाफ अपराध बनता है। [पैरा 12] [279,सी]

2. सिविल सूट में 'डीएन' का साक्ष्य बहुत विस्तृत था और उसके

द्वारा दिए गए कुछ विरोधाभासी बयान प्रतीत होते थे जैसे कि राशि का भुगतान 'आरएस' द्वारा ऋण के रूप में किया गया था और यह इस कथन का खंडन करता है कि पैसे का भुगतान बिक्री प्रतिफल के रूप में किया गया था। सिविल सूट के फैसले में, यह माना गया कि अनुचित प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि इस स्तर पर आपराधिक मामले में चल रही कार्यवाही पूरी तरह से दुर्भावनापूर्ण और गुप्त उद्देश्य से थी। [पैरा 14] [279,एच; 280,एबी]

3. प्रतिवादी 'आरएस' ने उच्च न्यायालय के समक्ष जो दलीलें दी थीं, वे मुकदमे के समय उनके द्वारा ली जा सकती थीं, और इस स्तर पर आपराधिक कार्यवाही को टालना उचित नहीं होगा। एफआईआर में उन पर गंभीर आरोप लगाए गए थे. एक वकील और उसके मुवक्किल का रिश्ता एक वैश्वाषिक रिश्ते की तरह होता है, और वकील को अपने मुवक्किल के हित में कार्य करना होता है। हालांकि, एफआईआर में आरोप लगाया गया कि 'आरएस' ने शिकायतकर्ता और उसके पति को धोखा दिया। ये ऐसे मामले हैं जिन पर आपराधिक मामले में निचली अदालत को गौर करना चाहिए। हालाँकि, यह सीआरपीसी की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए 'आरएस' के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए उपयुक्त मामला नहीं था। [पैरा 15] [280,सीई]

इकबाल सिंह मारवाह और अन्य बनाम मीनाक्षी मारवाह और अन्य (2005) 4 एससीसी 370; केजी प्रेमशंकर बनाम पुलिस इंस्पेक्टर और अन्य (2002) 8 एससीसी 87; हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य। (1992) सप्प. 1 एससीसी 335; पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य। (1998) 5 एससीसी 749; मीनू कुमारी और अन्य. बनाम बिहार राज्य और अन्य। (2006) 4 एससीसी 359 और *उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी (2005) 1 एससीसी 568 - संदर्भित किये।

4. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायालय के फैसले को यूक्लिड फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। न्यायालयों की टिप्पणियों को न तो यूक्लिड के सूत्र के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और न ही क़ानून के प्रावधानों के रूप में। इस प्रकार, जबकि यह सच है कि *देवेंद्र नाथ पाधी मामले के मद्देनजर आरोप तय करते समय अदालत द्वारा सामान्य तौर पर बचाव सामग्री पर गौर नहीं किया जा सकता है, कुछ बहुत ही दुर्लभ और असाधारण मामले हो सकते हैं जहां कुछ बचाव सामग्री को मुकदमे में दिखाया जाता है अदालत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करेगी कि अभियोजन संस्करण पूरी तरह से असंगत या बेतुका है, और ऐसे बहुत ही दुर्लभ मामलों में बचाव सामग्री को आरोप तय करने या संज्ञान लेने के समय अदालत द्वारा देखा जा सकता है। हालाँकि, मौजूदा मामले में, यह

नहीं कहा जा सकता है कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष बचाव पक्ष द्वारा सिविल सूट में पेश किए गए सबूतों से यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया है कि अभियोजन का मामला पूरी तरह से असंगत या बेतुका है। यह एक ऐसा मामला है जिसे ट्रायल कोर्ट को देखना होगा। 'आरएस' के संबंध में उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द कर दिया गया है और उसके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही ट्रायल कोर्ट में चलेगी। जहां तक अन्य आपराधिक अपील का संबंध है जिसमें 'आरएस' की पत्नी श्रीमती 'वीएस' प्रतिवादी थीं, ऐसी कोई भी सामग्री न तो एफआईआर में उल्लिखित थी और न ही अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई थी, जिससे यह पता चले कि वह अपने पति 'आरएस' द्वारा किए गए कथित आपराधिक अपराध में किसी भी तरह से शामिल थी। . उसके खिलाफ एकमात्र आरोप यह था कि बिक्रीनामा उसके पक्ष में था। इससे प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता। इसलिए, 'वीएस' के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से रद्द कर दिया गया था। [पैरा 17-19, 21-22] [281,सीई; 282,एबी; 282,ईजी]

डॉ. राजबीर सिंह दलाल बनाम चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, सिरसा एवं अन्य जेटी (2008) 8 एससी 621; भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम एनआर वैरामनी और अन्य एआईआर (2004) एससी 4778 पर - अवलंब लिया।

डॉ. मोनिका कुमार एवं अन्य। बनाम यूपी राज्य और अन्य। (2008) 9 स्केल 166 का उल्लेख किया गया है।

प्रति कबीर, जे.: (सीआरपीसी की धारा 227 के प्रावधानों की व्याख्या से सहमत और मामले में अपने विचार व्यक्त करते हुए)

अभिनिर्धारित: 1. आरोप तय करने के चरण में आरोपी के पास अपने समर्थन में कोई सबूत पेश करने की कोई गुंजाइश नहीं है और उस चरण में केवल ऐसी सामग्री जो सीआरपीसी की धारा 227 में इंगित की गई है, मजिस्ट्रेट द्वारा विचार किया जा सकता है। हालाँकि, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत की गई कार्यवाही में न्यायालय उस सामग्री पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है जो आरोपी की ओर से इस निर्णय पर पहुंचने के लिए प्रस्तुत की जा सकती है कि तय किए गए आरोप को बरकरार रखा जा सकता है या नहीं। धारा एस.एस. 227 और 228 के शब्दों को जिस तरह से शब्दबद्ध किया गया है उससे विधायिका की यही मंशा प्रतीत होती है और जैसा कि *देवेंद्र नाथ पाढ़ी के मामले में बड़ी बेंच द्वारा समझाया गया है, जिसे वही प्रश्न भेजा गया था। [पैरा 9] [286,ई-जी]

*उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी (2005) 1 एससीसी 568; सतीश मेहरा बनाम दिल्ली प्रशासन (1996) 9 एससीसी 766; राज्य भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो बनाम पी. सूर्यप्रकाशन (1999) एससीसी सीआरएल 373 - संदर्भित।

2. दायर शिकायत आरोपी 'आरएस' के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनाती है और मजिस्ट्रेट द्वारा लिए गए संज्ञान को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। हालाँकि, प्रथम दृष्टया भी, आरोप-पत्र में उल्लिखित कोई भी अपराध आरोपी 'वीएस' के खिलाफ नहीं बनाया जा सकता है और उसे केवल धारा 120 बी की सहायता से दायी बनाया गया है जो कि प्रमाणित भी नहीं है। [पैरा 10] [286,जीएच; 287,ए]

केस कानून संदर्भ

(2005) 4 एससीसी 370	संदर्भित	पैरा 10
(2002) 8 एससीसी 87	संदर्भित	पैरा 10
(1992) अनुपूरक 1 एससीसी 335	संदर्भित	पैरा 11
(1998) 5 एससीसी 749	संदर्भित	पैरा 11
(2006) 4 एससीसी 359	संदर्भित	पैरा 11
(2005) 1 एससीसी 568	संदर्भित	पैरा 16
जेटी (2008) 8 एससी 621	संदर्भित	पैरा 17
एआईआर (2004) एससी 4778	भरोसा किया	पैरा 17
(2008) 9 स्केल 166	संदर्भित	पैरा 20

(2005) 1 एससीसी 568 संदर्भित पैरा 3

(1996) 9 एससीसी 766 संदर्भित पैरा 3

(1999) एससीसी सीआरएल 373 संदर्भित पैरा 6

आपराधिक रिट याचिका संख्या 7 और 8 2007 में बॉम्बे उच्च न्यायालय, गोवा की खंडपीठ के फैसले और अंतिम आदेश दिनांक 3/8/2007 से

मुकुल रोहतगी, ध्रुव मेहता, हर्षवर्द्धन झा, यशराज सिंह देवड़ा और टीएस सबरीश (के.एल. मेहता एंड कंपनी) अपीलकर्ता के लिए।

प्रतिवादियों की ओर से यूयू ललित, पीवी शेट्टी, देवदत्त कामत, रऊफ रहीम और अमरजीत सिंह बेक्सी।

न्यायालय के फैसले मार्कंडेय काटजू, जे. द्वारा सुनाए गए।

1. अनुमति दी गई।

2. ये अपीलें आपराधिक रिट याचिका संख्या 7/2007 और 8/2007 में बॉम्बे उच्च न्यायालय (गोवा) के विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 3.8.2007 के एक साथ फैसले के खिलाफ दायर की गई हैं।

3. दोनों पक्षों के विद्वान वकील को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

4. इन दोनों अपीलों में प्रतिवादी संख्या 1 और 2 पति और पत्नी होकर रंजीत सातार्डेकर और उनकी पत्नी विजया सातार्डेकर हैं। रुक्मिणी नार्वेकर (यहाँ अपीलकर्ता) द्वारा आईपीसी की धारा 409 , 420 , 423 आदि सहित विभिन्न प्रावधानों के तहत इन उत्तरदाताओं के खिलाफ दिनांक 25.2.2002 को एक एफआईआर दर्ज की गई थी। इस एफआईआर की एक सत्य प्रति इस अपील में पी 6 के रूप में संलग्न है। इस एफआईआर का सार यह है कि शिकायतकर्ता एक अनपढ़ व्यक्ति है और उसका पति रघुनाथ नार्वेकर भी अनपढ़ है। यह आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी रंजीत सातार्डेकर, जो एक वकील हैं, ने धोखे से और बेईमानी से शिकायतकर्ता और उसके मृत पति को सावंतवाड़ी में कार्यकारी मजिस्ट्रेट के कार्यालय में कुछ कागजात पर उनके हस्ताक्षर और अंगूठे के निशान लगाने के लिए प्रेरित किया, बिना उनकी सामग्री को समझाए, और यह गलत तरीके से प्रस्तुत किया कि आंद्रे एंड्रेड की मृत्यु पर इन्वेंटरी कार्यवाही में गोवा की अदालत में उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए उन्हें आवश्यक अधिकार देना आवश्यक था, जो उनके द्वारा छोड़ी गई संपत्ति से संबंधित चल रही थी। यह उल्लेख किया जा सकता है कि आंद्रे एंड्रेड के कई बच्चे थे, जिनमें एक बेटी भी शामिल थी, जिसकी शादी रघुनाथ नार्वेकर से हुई थी, लेकिन उनकी शादी 16.2.1973 को भंग हो गई और उसके बाद रघुनाथ नार्वेकर ने शिकायतकर्ता से शादी कर ली। गोवा कानून के तहत, रघुनाथ नार्वेकर और शिकायतकर्ता को मृतक आंद्रे एंड्रेड द्वारा छोड़ी गई

संपत्ति में 10% हिस्सा विरासत में मिला और शेष 10% विजया एंड्रेड को मिला, जिनकी शादी रघुनाथ नार्वेकर से हुई थी और इन्वेंटरी कार्यवाही में उनका प्रतिनिधित्व वकील रंजीत सातार्डेकर कर रहे थे।

5. एफआईआर में आरोप यह था कि रंजीत सातार्डेकर ने शिकायतकर्ता और उसके पति को गलत तरीके से प्रस्तुत किया था कि जो दस्तावेज़ उनके द्वारा निष्पादित किया जा रहा था वह रंजीत को आंद्रे एंड्रेड की मृत्यु पर चल रही इन्वेंटरी कार्यवाही में उनका प्रतिनिधित्व करने में सक्षम बनाने के लिए था, हालांकि वास्तव में उनके द्वारा जो निष्पादित किया गया वह पावर ऑफ अटॉर्नी थी। इस पावर ऑफ अटॉर्नी का उपयोग आरोपी ने वर्ष 1991 में अपनी पत्नी विजया सातार्डेकर और सादिक शेख के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए किया था, लेकिन उक्त विक्रय विलेख केवल वर्ष 2001 में पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया गया था। शिकायतकर्ता का आरोप है कि 1991 में विक्रय विलेख के निष्पादन के बारे में पहली बार अगस्त 2001 में ही पता चला। इस प्रकार यह आरोप लगाया गया है कि शिकायतकर्ता की संपत्ति को वकील रंजीत सातार्डेकर ने धोखे और गलत बयानी से बेच दिया था, जिसके लिए उसे आईपीसी की धारा 409 , 420 और अन्य प्रावधानों के तहत दंडित किया जाना चाहिए ।

6. उपरोक्त एफआईआर के आधार पर, पुलिस ने मामले की जांच की

और रंजीत सातार्डेकर और श्रीमती विजया सातार्डेकर के साथ-साथ दो अन्य लोगों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया। इसके बाद, आरोपपत्र में कथित अपराध का संज्ञान लिया गया और न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, पणजी द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 468 / 471 / 420 / 120-बी के तहत प्रक्रिया जारी की गई।

7. आरोपियों के खिलाफ संज्ञान लेने और प्रक्रिया जारी करने के आदेश के खिलाफ, उन्होंने सत्र न्यायाधीश, पणजी के समक्ष एक आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया, जिसे उनके निर्णय दिनांक 19.6.2007 द्वारा खारिज कर दिया गया। उस आदेश के विरुद्ध एक रिट याचिका दायर की गई थी जिसे उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 3.8.2007 के आक्षेपित निर्णय द्वारा अनुमति दी गई थी। इसलिए यह अपील दायर की।

8. हमने दोनों पक्षों की विस्तृत दलीलें सुनी हैं और हमारी राय है कि उच्च न्यायालय के फैसले को उस हद तक कायम नहीं रखा जा सकता, जहा तक उसने रंजीत सातार्डेकर के खिलाफ शिकायत और कार्यवाही को रद्द कर दिया है, लेकिन जहां तक इसका संबंध विजया सातार्डेकर है, इसे बरकरार रखा जाना चाहिए।

9. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री मुकुल रोहतगी ने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय के विद्वान एकल

न्यायाधीश ने सिविल सूट (2004 की संख्या 97, 2004 की नई संख्या 101) में साक्ष्य कार्यवाही पर काफी हद तक भरोसा किया है। . शिकायतकर्ता उक्त सिविल मुकदमे में वादी नंबर 1 था, जिसका फैसला 30.12.2006 को हुआ है। श्री रोहतगी ने कहा है कि उच्च न्यायालय को आपराधिक मामले को रद्द करने के उद्देश्य से उपरोक्त सिविल मुकदमे में सबूतों पर भरोसा नहीं करना चाहिए था। दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री यूयू ललित ने प्रस्तुत किया है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए इस मामले के तथ्यों पर उक्त साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता था।

10. इन प्रस्तुतियों पर विचार करने से पहले हम यह बता सकते हैं कि इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ के कुछ फैसले थे, जिन्होंने माना था कि एक सिविल मुकदमे में निष्कर्ष समान तथ्यों पर एक आपराधिक मामले में बाध्यकारी हैं, लेकिन इसके विपरीत नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस न्यायालय की बड़ी पीठों के बाद के निर्णयों में इस दृष्टिकोण को कुछ हद तक कमजोर कर दिया गया है, उदाहरण के लिए इस न्यायालय की संविधान पीठ का निर्णय इकबाल सिंह मारवाह और अन्य बनाम मीनाक्षी मारवाह और अन्य 2005 (4) एससीसी 370 (पैरा 32 के अनुसार) [जेटी 2005 (3) एससी 195] मामले में व साथ ही केजी प्रेमशंकर बनाम पुलिस निरीक्षक और अन्य में तीन न्यायाधीशों की पीठ

का निर्णय । 2002(8) एससीसी 87 (पैरा 30 से 33 के अनुसार)।

11. सीआरपीसी की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक कार्यवाही को कब रद्द किया जा सकता है, इसके सम्बन्ध में कानून इस न्यायालय द्वारा हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य 1992 अनुपूरक (1) एससीसी 335 (पैरा 102 के अनुसार)। 103) [जेटी 1990(4) एससी 650] में निर्धारित किया गया है। इस निर्णय के बाद पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य 1998(5) एससीसी 749 [जेटी 1997 (8) एससी 705], मीनू कुमारी और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 2006 (4) एससीसी 359 [जेटी 2006(4) एससी 569] जैसे कई निर्णय लिए गए ।

12. श्री रोहतगी ने कहा कि इस मामले में एफआईआर के अवलोकन पर यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपों को सही मानते हुए रंजीत सातार्डेकर के खिलाफ प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है। हमने एफआईआर का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और हम श्री रोहतगी की दलील से सहमत हैं। अगर एफआईआर में लगाए गए आरोपों को प्रथम दृष्टया सही माना जाए तो प्रतिवादी रंजीत सातरेडकर के खिलाफ अपराध बनता है। हालांकि, रंजीत सातार्डेकर के विद्वान वकील श्री ललित ने कहा कि भजन लाल के मामले (सुप्रा) में ही उक्त निर्णय के पैरा 102 में दिया

गया सातवां आधार इस मामले के तथ्यों पर लागू होता है। सातवां आधार जो उच्च न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का अधिकार देता है, वह भंजन लाल के मामले (सुप्रा) में इस प्रकार बताया गया है:

> "जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।"

13. श्री ललित ने प्रस्तुत किया कि रंजीत सातार्डेकर के खिलाफ कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण थी जैसा कि सिविल सूट में धनंजय नार्वेकर के साक्ष्य से स्पष्ट है जहां उन्होंने कहा है कि उन्हें रंजीत सातार्डेकर से कुछ पैसे मिले हैं। श्री ललित के अनुसार इससे साबित होता है कि 1991 का विक्रय पत्र शिकायतकर्ता को पूरी जानकारी में था।

14. हमने सिविल सूट में धनंजय नार्वेकर के साक्ष्यों का अवलोकन किया है और हमने सिविल सूट में फैसले का भी अवलोकन किया है, जिसके खिलाफ हमें सूचित किया गया है कि एक अपील लंबित है। धनंजय नार्वेकर का साक्ष्य बहुत विस्तृत है और उनके द्वारा दिए गए कुछ विरोधाभासी बयान प्रतीत होते हैं, उदाहरण के लिए कि राशि का भुगतान रंजीत सातार्डेकर द्वारा ऋण के रूप में किया गया था, और यह इस

संस्करण का खंडन करता है कि पैसे का भुगतान बिक्री प्रतिफल के रूप में किया गया था। सिविल कोर्ट के फैसले में कहा गया है कि अनुचित प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि इस स्तर पर आपराधिक मामले की कार्यवाही पूरी तरह से दुर्भावनापूर्ण और गलत इरादे से की गई थी।

15. यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रतिवादी रंजीत सातार्डेकर ने उच्च न्यायालय के समक्ष जो दलीलें दी थीं, वे मुकदमे के समय ली जा सकती थीं, और इस स्तर पर आपराधिक कार्यवाही को रोकना उचित नहीं होगा। एफआईआर में उन पर गंभीर आरोप लगाए गए हैं. एक वकील और उसके मुवक्किल का रिश्ता एक वैश्वाषिक रिश्ते की तरह होता है, और वकील को अपने मुवक्किल के हित में कार्य करना होता है। हालांकि, एफआईआर में यह आरोप लगाया गया है कि रंजीत सातार्डेकर ने शिकायतकर्ता और उसके पति को उपरोक्त तरीके से धोखा दिया। ये ऐसे मामले हैं जिन पर आपराधिक मामले में निचली अदालत को गौर करना चाहिए और हम इस सवाल पर किसी भी तरह की कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं। हालाँकि, हमारी राय है कि सीआरपीसी की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए रंजीत सातार्डेकर के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए यह उपयुक्त मामला नहीं है।

16. श्री मुकुल रोहतगी ने कहा कि आरोप तय करने के समय केवल अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर न्यायालय द्वारा गौर किया जा सकता है, लेकिन बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर गौर नहीं किया जा सकता है। उन्होंने इस संबंध में इस न्यायालय के कई निर्णयों पर भरोसा जताया है, उदाहरण के लिए उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी 2005(1) एससीसी 568.

17. हमने उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी (सुप्रा) मामले में इस न्यायालय के फैसले का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है । यद्यपि उक्त निर्णय के पैराग्राफ 16 की टिप्पणियाँ श्री रोहतगी द्वारा रखे दृष्टिकोण का समर्थन करती प्रतीत होती हैं। यह भी उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उसी निर्णय के पैराग्राफ 29 में यह देखा गया है कि उच्च न्यायालय की शक्तियों की सीमा सीआरपीसी की धारा 482 और संविधान का अनुच्छेद 226 के तहत असीमित है जिसके तहत न्याय के हित में उच्च न्यायालय ऐसे आदेश दे सकता है जो अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं जैसा की भजनलाल के मामले में (सुप्रा) निर्धारित मापदंडो में बताया गया है । इस प्रकार हमें उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी (सुप्रा) मामले में निर्णय के पैराग्राफ 16 और 23 में सामंजस्य स्थापित करना होगा। हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायालय के

फैसले को यूक्लिड फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जाना चाहिए जैसा की डॉ. राजबीर सिंह दलाल बनाम चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, सिरसा व अन्य जेटी 2008(8) एससी 621 में बताया गया । जैसा कि इस न्यायालय ने भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम एनआर वैरामनी और अन्य एआईआर 2004 एससी 4778 में बताया है की न्यायालयों की टिप्पणियों को न तो यूक्लिड के सूत्र के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और न ही क़ानून के प्रावधानों के रूप में। इस प्रकार हमारी राय में यह सच है कि डीएन पाधी के मामले (सुप्रा) के मद्देनजर आरोप तय करते समय आमतौर पर बचाव सामग्री पर अदालत द्वारा गौर नहीं किया जा सकता है, लेकिन कुछ बहुत ही दुर्लभ और असाधारण मामले हो सकते हैं जहां ट्रायल कोर्ट को कुछ बचाव सामग्री को दिखाया जाता है जो दृढ़तापूर्वक प्रदर्शित करेगा कि अभियोजन पक्ष का संस्करण पूरी तरह से असंगत या बेतुका है, और ऐसे बहुत ही दुर्लभ मामलों में बचाव सामग्री को आरोप तय करने या संज्ञान लेने के समय कोर्ट द्वारा देखा जा सकता है।

18. हमारी राय में, इसलिए, यह एक पूर्ण के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि किसी भी परिस्थिति में न्यायालय आरोप तय करने के समय बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर गौर नहीं कर सकता है, हालांकि ऐसा बहुत ही दुर्लभ मामलों में किया जाना चाहिए। यानी जहां बचाव पक्ष कुछ ऐसी सामग्री पेश करता है जो स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है कि

अभियोजन का पूरा मामला पूरी तरह से असंगत है या पूरी तरह से मनगढ़ंत है। हम श्री ललित से सहमत हैं कि कुछ बहुत ही दुर्लभ मामलों में आरोप तय करते समय बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर गौर करना न्यायालय के लिए उचित है , यदि ऐसी सामग्री दृढ़तापूर्वक स्थापित करती है कि अभियोजन पक्ष का पूरा संस्करण पूरी तरह से असंगत, बेतुका या मनगढ़ंत है। .

19. हालाँकि, इस मामले में यह नहीं कहा जा सकता है कि सिविल सूट में बचाव पक्ष द्वारा ट्रायल कोर्ट के समक्ष जो सबूत पेश किए गए थे, वे इस बात को पुख्ता तौर पर स्थापित करते हैं कि अभियोजन का मामला पूरी तरह से असंगत या बेतुका है। हमारी राय में यह एक ऐसा मामला है जिसे ट्रायल कोर्ट को देखना होगा।

20. डॉ. मोनिका कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2008(9) स्केल 166 में इस न्यायालय ने अभियुक्तों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के बिंदु पर विभिन्न निर्णयों का उल्लेख किया। इस फैसले में इस कोर्ट ने आरोपियों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया, हालांकि एफआईआर में लगाए गए आरोपों पर प्रथम दृष्टया अपराध बनता है। इस प्रकार मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आपराधिक मामले को रद्द कर दिया गया। इसमें कोई शक नहीं कि इस फैसले में कोर्ट ने संविधान के अनुच्छेद 142 पर भरोसा

किया है, लेकिन हमारी राय में अनुच्छेद 142 के बावजूद नतीजा वही होता, जो था।

21. इस प्रकार हम उस आपराधिक अपील की अनुमति देते हैं जिसमें रंजीत सातार्डेकर प्रतिवादी हैं और हम रंजीत सतारेडकर के संबंध में उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द करते हैं और निर्देश देते हैं कि उनके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही ट्रायल कोर्ट में चलेगी । हालाँकि, ट्रायल कोर्ट इस फैसले में की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित नहीं होगा।

22. अन्य आपराधिक अपील के संबंध में जिसमें श्रीमती विजया सातार्डेकर रंजीत सातार्डेकर की पत्नी प्रतिवादी हैं, हमारी राय है कि एफआईआर में उल्लेखित या अभियोजन पक्ष द्वारा पेश की गई कोई भी सामग्री यह दिखाने के लिए काफी नहीं है कि विजया सातार्डेकर किसी भी तरह से कथित आपराधिक अपराध में उनके पति रंजीत सातार्डेकर के साथ शामिल थीं। उनके खिलाफ एकमात्र आरोप यह है कि बिक्रीनामा उनके पक्ष में था। हमारी राय में प्रथम दृष्टया यह कोई अपराध नहीं बनता। इसलिए, हमारी राय में, विजया सातार्डेकर के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा सही ढंग से रद्द कर दिया गया था और आपराधिक अपील जिसमें विजया सातार्डेकर प्रतिवादी है, खारिज कर दी गई है।

23. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

अल्तमस कबीर, जे. 1. मैंने अपने विद्वान भाई द्वारा तैयार किए गए फैसले के मसौदे को ध्यान से पढ़ा है और हालांकि मैं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 , जिसे इसके बाद "सीआरपीसी "के रूप में संदर्भित किया गया है, के प्रावधानों की उनकी व्याख्या से सहमत हूं। और इस मामले में अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूं। सीआरपीसी की धारा 227 , जो संहिता के अध्याय XVIII में है, जो सत्र न्यायालय के समक्ष मुकदमों से संबंधित है, आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने के समय मुकदमे के शुरुआती चरणों से संबंधित है जो धारा 228 के तहत किया जाता है । धारा 227 जो हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, इस प्रकार है:

> "227. उन्मोचन - यदि, मामले के रिकॉर्ड और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों और इस संबंध में अभियोजन पक्ष पर विचार करने पर, न्यायाधीश मानता है कि आरोपी के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह आरोपी को डिस्चार्ज कर देगा और ऐसा करने के उसके कारण को रिकॉर्ड करेगा ।"

2. उपरोक्त प्रावधान कई मामलों में इस न्यायालय के विचाराधीन है, इस सवाल पर कि क्या आरोप तय करने के चरण में, इस प्रावधान में वर्णित तथ्यों के अतिरिक्त न्यायालय को किसी अन्य सामग्री पर विचार करने की आवश्यकता है।

3. उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी [(2005) 1 एससीसी 568] में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ के फैसले में , जिसका मेरे विद्वान भाई ने भी उल्लेख किया है, यह उल्लेख किया गया है कि मामला कैसे बड़ी बेंच को भेजा गया. 1996 तक, इस न्यायालय द्वारा लगातार यह दृष्टिकोण अपनाया गया था कि आरोप तय करते समय ट्रायल कोर्ट केवल ऐसी सामग्री पर विचार कर सकता है जो धारा 227 की भाषा को ध्यान में रखते हुए जांच एजेंसी द्वारा रखी गई हो। उस स्तर पर, बचाव पक्ष को केवल सुना जा सकता था लेकिन न्यायालय के विचारार्थ साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया जा सकता था। हालाँकि, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीश पीठ द्वारा सतीश मेहरा बनाम दिल्ली प्रशासन [(1996) 9 एससीसी 766 में एक अलग दृष्टिकोण व्यक्त किया गया था। विद्वान न्यायाधीशों ने कहा कि यदि आरोपी संज्ञान लेने या आरोप तय करने किसी भी विश्वसनीय सामग्री को पेश करने में सक्षम थे, जो मामले की स्थिरता को घातक रूप से प्रभावित कर सकता है, तब यह सुझाव देना अन्यायपूर्ण है कि उस स्तर पर न्यायालय द्वारा ऐसी किसी भी सामग्री पर गौर नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए, यह माना गया कि ट्रायल कोर्ट को उस सामग्री पर भी विचार करने की शक्ति होगी, जिसे अभियुक्त संहिता की धारा 227 में विचार किए गए चरण में प्रस्तुत कर सकता है। यह सतीश मेहरा मामले (सुप्रा) में एक अन्यथा स्थापित सिद्धांत पर एक असंगत नोट के प्रहार के कारण देबेंद्र नाथ पाधी के मामले (सुप्रा) में उक्त प्रश्न को एक

बड़ी पीठ को संदर्भित करते हुए एक आदेश पारित किया गया था और उसी पर विचार किया गया था। उक्त मामले पर तीन जजों की बेंच द्वारा ही विचार किया ।

4. सत्र विचारणीय मामलों से संबंधित धारा 227 और 228 सीआरपीसी का जिक्र करते हुए , तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने मजिस्ट्रेट द्वारा वारंट मामलों की सुनवाई से संबंधित धारा 239 और 240 सीआरपीसी के प्रावधानों पर भी विचार किया, जो लगभग 227 और 228 सीआरपीसी धाराओं के समान हैं। देबेंद्र नाथ पाधी के मामले (सुप्रा) में दिया गया निर्णय यह स्पष्ट करता है कि मामले में निपटाया जाने वाला प्रमुख मुद्दा आरोप तय करने के चरण में अदालत के विचार के लिए सबूत पेश करने के आरोपी द्वारा प्राप्त अधिकार के संबंध में था।

5. संहिता की धारा 227 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "केस का रिकॉर्ड"और "केस"शब्द की व्याख्या करते हुए , विद्वान न्यायाधीशों ने माना कि उक्त अभिव्यक्तियों का स्पष्ट रूप से रिकॉर्ड और उसके साथ उत्पादित दस्तावेजों या लेखों का मतलब है, जैसा कि संकेत दिया गया है। सीआरपीसी की धारा 227 में यह देखा गया कि संहिता में कोई भी प्रावधान आरोपी को आरोप तय करने के चरण में कोई भी सामग्री या दस्तावेज दाखिल करने का अधिकार नहीं देता है। अधिकार केवल विचारण के चरण में ही प्रदान किया जाता है।

6. इसके बाद विद्वान न्यायाधीश ने पहले के मामलों की जांच की, जहां आम राय यह थी कि संहिता की धारा 227 और 228 के चरण में न्यायालय को यह देखना आवश्यक है कि क्या आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त आधार है या क्या मुकदमा उसकी दोषसिद्धि के साथ समाप्त होना निश्चित है। विद्वान न्यायाधीश ने दूसरे निर्णय पर विचार करते समय राज्य भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो बनाम पी. सूर्यप्रकाशन [(1999) एससीसी(सीआरआई)373] में इस न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख किया , जिसमें यह बताया गया था कि आरोप तय करने के समय , ट्रायल कोर्ट को केवल संहिता की धारा 173 में संदर्भित पुलिस रिपोर्ट और उसके साथ भेजे गए दस्तावेजों पर विचार करना आवश्यक है और कर सकता है। इस बात पर जोर दिया गया कि उस स्तर पर आरोपी के लिए उपलब्ध एकमात्र अधिकार सुनवाई का था और इससे आगे कुछ भी नहीं।

7. संदर्भित प्रश्नों के मापदंडों की पहचान करने के लिए, बड़ी पीठ ने पाया कि उसके समक्ष मामले में शामिल प्रश्न संहिता की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार के बारे में नहीं था, जहां याचिका के साथ-साथ आरोपी स्टर्लिंग गुणवत्ता का बेदाग साक्ष्य भी दाखिल कर सकता है और उस आधार पर रद्द करने की मांग की गई है, लेकिन यह आरोप तय करने के चरण में सामग्री का उत्पादन करने के लिए आरोपी द्वारा दावा किए गए अधिकार के बारे में है। इसलिए, बड़ी पीठ उस सीमा के प्रति पूरी तरह से

सचेत थी जिसके भीतर उसे अपने विचारों को सीमित रखने की आवश्यकता थी और उसी संदर्भ में निर्णय दिया गया था। फैसले के शुरुआती पैराग्राफ से भी यही स्पष्ट होगा। संदर्भित प्रश्नों पर निर्णय लेते समय, बड़ी पीठ ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष सीआरपीसी की धारा 227 के तहत कार्यवाही और सीआरपीसी की धारा 482 के तहत कार्यवाही के बीच सचेतन अंतर किया और इसके अलावा अन्य सामग्री पर विचार करने की न्यायालय की शक्ति का संदर्भ दिया जो धारा 482 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए। यह उस संदर्भ में है कि सतीश मेहरा के मामले (सुप्रा) में दिया गया निर्णय गलत था, बड़ी पीठ ने कहा कि यदि आरोप तय करने के चरण में आरोपी का बेगुनाही के सबूत में सामग्री और दस्तावेज पेश करना, यदि स्वीकार किया जाता, तो यह सौ वर्षों से अधिक समय से स्थापित कानून को अस्थिर करने वाला होता। इसी आलोक में सीआरपीसी की धारा 227 के प्रावधानों को समझना होगा और इसका मतलब केवल अभियोजन पक्ष द्वारा दायर मामले के रिकॉर्ड और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर आरोपी की दलीलों को सुनना है और इससे ज्यादा कुछ नहीं। बड़ी पीठ निश्चित निष्कर्ष पर पहुंची कि अभिव्यक्ति "आरोपी की दलीलें सुनना"का मतलब आरोपी को दी जाने वाली सामग्री दाखिल करने का अवसर नहीं हो सकता है और इस तरह तय कानून को बदल दिया जा सकता है। आरोप तय करने के चरण में अभियुक्तों की दलीलें पुलिस द्वारा पेश की गई सामग्री तक ही सीमित रहनी

चाहिए।

8. बड़ी पीठ ने धारा 227 के प्रावधानों की अलग व्याख्या की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी जैसा कि अब की जा रही है। संयोगवश, वही दलीलें जो अभियुक्त की ओर से श्री ललित ने हमारे सामने रखीं, वही दलीलें विद्वान वकील ने बड़ी पीठ के समक्ष भी पेश कीं और जहां तक सीआरपीसी की धारा 227 का सवाल है, उन्हें खारिज कर दिया गया । हालाँकि, फैसले के पैराग्राफ 21 और 29 में बड़ी बेंच ने संकेत दिया कि सीआरपीसी की धारा 482 और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों का दायरा असीमित है, जिसके तहत न्याय के हित में उच्च न्यायालय ऐसा आदेश कर सकता है जो न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने और किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक हो।

9. मेरे विचार में, इसलिए, आरोप तय करने के चरण में आरोपी के लिए उसकी ओर से किए गए सबमिशन के समर्थन में कोई सबूत पेश करने की कोई गुंजाइश नहीं है और केवल वही सामग्री पेश की जा सकती है जो सीआरपीसी की धारा 227 में इंगित की गई है और उस स्तर पर विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा विचार किया जा सकता है। हालाँकि, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत की गई कार्यवाही में अदालत उस सामग्री पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है जो आरोपी की ओर से इस निर्णय पर पहुंचने के

लिए प्रस्तुत की जा सकती है कि तय किए गए आरोप को कायम रखा जा सकता है या नहीं। मेरे विचार से, यही विधायिका की मंशा प्रतीत होती है, जिस तरह से धारा 227 और 228 को शब्दों में लिखा गया है और जिस तरह से देबेंद्र नाथ पाढ़ी के मामले (सुप्रा) में बड़ी पीठ द्वारा समझाया गया है, जिससे वही समान प्रश्न पूछा गया था और संदर्भित किया गया था।

10. हालाँकि, जैसा कि मेरे विद्वान भाई ने संकेत दिया है, की गई शिकायत आरोपी रंजीत सातार्डेकर के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनाती है और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा लिए गए संज्ञान को गलत नहीं ठहराया जा सकता है और जहां तक उसका संबंध है, अपील की अनुमति दी जानी चाहिए। हालाँकि, प्रथम दृष्टया भी, आरोप पत्र में उल्लिखित कोई भी अपराध आरोपी विजया सातार्डेकर के खिलाफ नहीं बनाया जा सकता है और उसे केवल धारा 120 बी की सहायता से दायी बनाया है, जो कि प्रमाणित भी नहीं है । इसलिए उसकी हद तक अपील खारिज की जानी चाहिए।

11. अपील तदनुसार निस्तारित की जाती है।

डी.जी. अपील निस्तारित

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से

अनुवादक न्यायिक अधिकारी पुलकित शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।